१६ जीवन में कर्म-सिद्धान्त की उपयोगिता

□ श्री कल्याणमल जैन

जीवन क्या है ?

आकाश में उड़ते हुए पंछी से एक मुसाफिर ने पूछा—"गगन बिहारी, क्या आप बता सकते हैं कि जीवन क्या है ?" पंछी ने उत्तर दिया—"भले मानुष ! यह भी पूछने की बात है। वह जो तेरे पांवों के नीचे आधार की मिट्टी है और जो मेरे सिर के ऊपर विहार का उन्मुक्त लोक है, यही तो जीवन है।" मुसाफिर यह समझकर बाग-बाग हो उठा कि वास्तव में यथार्थ और कल्पना का मेल कराने वाली यात्रा ही जीवन है।

बाल्यकाल की चंचलता, जवानी का उत्साह और वृद्धावस्था की उदासीनता का समन्वय ही जीवन है।

जिसे हम आत्मा, चैतन्य कहते हैं, उसे भगवान् महावीर ने जीव कहा है। आगमों में अधिकतर जीव शब्द का ही प्रयोग मिलता है। जीव शब्द का अर्थ है—जो अनन्त काल से जीता आ रहा है और अनन्त-अनन्त अनागत काल की यात्रा के लिए जीता जा रहा है अर्थात् जो जीवित है, जीवित था और सदैव जीवित रहेगा, वह जीव है। वह अनन्त-अनन्तकाल के प्रवाहमान प्रवाह में जीता जा रहा है। जीवन की कोई सीमा नहीं, अतः उसका मरण भी नहीं। मरण जन्म के साथ-साथ चलता है। जन्म और मरण के दो किनारों के मध्य में जो जिन्दगी के वर्ष हैं, उन्हें हम जीवन कहते हैं। यह जिन्दगी की धारा जन्म-मरण के किनारों के मध्य गतिशील है—वस्तुतः यही जीवन है।

चैतन्य की अपेक्षा आत्मा अजन्मा है, परन्तु अपने शुभाशुभ कर्म के अनुसार चैतन्य (आत्मा) देह धारण करता है। अतः आत्मा का नया जन्म नहीं होता, जन्म होता है तो देह का। किसी एक योनि से बन्धे हुए आयु कर्म का उदय में आना जन्म है और उसका क्षय होना मरण है। उसके मध्य में देहवास की स्थिति जीवन है। आत्मा वही है—बदलता है केवल देह। जैसे एक व्यक्ति घर को छोड़कर अथवा तोड़कर नया घर बनाता है, बस इसी तरह संसार में परिभ्रमणशील आत्मा आयु कर्म का क्षय होते ही नये घर में प्रवेश करती है, इस नये घर के निर्माण को ही हम जन्म कहते हैं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

नये घर में जाने के लिए पुराने घर को छोड़ना होता है अर्थात् देह छोड़ना मरण है। इस जन्म और मरण के बीच जो सांसों की झंकार है वही जीवन है।

कर्म क्या है ?

साधारण रूप में जो कुछ किया जाता है, उसे कर्म कहते हैं। जैसे खाना-पीना, बोलना, चलना, सोचना, विचारना, उठना, बैठना आदि। किन्तु यहां कर्म शब्द से केवल क्रिया रूप ही परिलक्षित नहीं है। 'महापुराण' में कर्म रूपी ब्रह्मा के पर्यायवाची शब्द इस प्रकार हैं:—

विधि सृष्टा विधाता च दैवं कर्मपुरा कृतम्।
ईश्वर - ईश्वर चेती पर्याय-कर्म वेधस्॥

अर्थात्—विधि, सृष्टि, विधाता, दैवपुरा, कृतम्, ईश्वर ये कर्म रूपी ब्रह्मा के वाचक शब्द हैं। इस कर्म शब्द से इसी ब्रह्मा को ग्रहण किया है।

जैन दर्शन के अनुसार जीव के द्वारा हेतुओं से जो किया जाय, उस पुद्गल वर्गणा के संग्रह का नाम कर्म है। शुभ एवं अशुभ प्रवृत्ति के द्वारा आकृष्ट और सम्बन्धित होकर जो पुद्गल आत्मा के स्वरूप को आवृत्त करते हैं, विकृत करते हैं और शुभाशुभ फल के कारण बनते हैं। उन गृहित पुद्गलों का नाम है—कर्म ! यद्यपि यह पुद्गल एक रूप है, तथापि यह जिस आत्म गुण को प्रभावित करते हैं, उसके अनुसार ही उन पुद्गलों का नाम हो जाता है।

कर्म सिद्धान्त :

जो नियम कभी नहीं बदलते और यथार्थता को लिए हुए होते हैं, उन अटल नियमों को सिद्धान्त कहते हैं। उपर्युक्त जीवन का आधार कर्म-व्यवस्था है और कर्म-व्यवस्था के जो अटल नियम हैं, वहीं कर्म सिद्धान्त कहलाते हैं। जैसे धर्म दया में है, भूतकाल में था, वर्तमान में है, और भविष्य में भी रहेगा। ऐसे ही कर्म सिद्धान्त के नियम भी अटल हैं, जो इस प्रकार हैं :—

(१) चेतन का सम्बन्ध पाकर जड़ कर्म स्वयं अपना फल देता है। आत्मा उस फल को भोगता है।

(२) किसी भी कर्म के फल भोगने के लिए कर्म और उसके करने वालों के अतिरिक्त किसी तीसरे व्यक्ति की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि करते समय ही जीव के परिणामों के अनुसार एक प्रकार का संस्कार पड़ जाता है जिससे प्रेरित होकर जीव अपने कर्म का फल स्वयं भोगता है। कर्म भी चेतन से

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्बन्धित होकर अपने फल को अपने आप ही प्रकट करता है। जैसे—भंग घोटकर किसी बर्तन में रख देने से उस बर्तन को नशा नहीं होता, पर ज्योंही उस बर्तन में रखी हुई उस भंग को कोई व्यक्ति पीता है तो उसे समय पाकर अवश्य नशा होता है। उसमें तीसरी शक्ति की आवश्यकता नहीं होती। इसी प्रकार कर्म पुद्गल जीव का सम्बन्ध पाकर स्वयं अपना फल देता है—

को सुख को दुःख देत है, देत कर्म झकझोर ।
उलझत सुलझत आप ही, पता पवन के जोर ।।

कुछ दार्शनिक मानते हैं कि काल, स्वभाव, कर्म, पुरुषार्थ और नियति इन पांच समवाय के मिलने से जीव कर्म फल भोगता है। इन सब तर्कों से यह सिद्ध होता है कि जीव के भोग से कर्म अपना फल स्वयं देता है। इस सिद्धान्त को भारतीय आस्तिक दर्शनों के साथ-साथ बौद्ध दर्शन जैसे अनात्मवादियों ने भी स्वीकार किया है। उदाहरण के रूप में राजा मलिन्द और स्थविर नागसेन का संवाद इस प्रकार है—

राजा मलिन्द स्थविर नागसेन से पूछता है कि भन्ते ! क्या कारण है कि सभी मनुष्य समान नहीं होते, कोई कम आयु वाला और कोई दीर्घ आयु वाला, कोई रोगी, कोई नीरोगी, कोई भद्दा, कोई सुन्दर, कोई प्रभावहीन, कोई प्रभावशाली, कोई निर्धन, तो कोई धनी, कोई नीच कुल वाला, तो कोई उच्च कुल वाला, कोई मूर्ख, तो कोई विद्वान् क्यों होते हैं ? इन प्रश्नों का उत्तर स्थविर नागसेन ने इस प्रकार दिया।

राजन् ! क्या कारण है कि सभी वनस्पति एक जैसी नहीं है। कोई खट्टी तो कोई नमकीन, तो कोई तीखी तो कोई कड़वी क्यों होती है ?

मलिन्द ने कहा—मैं समझता हूँ कि बीजों की भिन्नता होने से वनस्पति भी भिन्न-भिन्न होती है।

नागसेन ने कहा—राजन् ! जीवों की विविधता का कारण भी उनका अपना-अपना कर्म ही होता है। सभी जीव अपने-अपने कर्मों का फल भोगते हैं। सभी जीव अपने-अपने कर्मों के अनुसार नाना गति-योनियों में उत्पन्न होते हैं।

राजा मलिन्द और नागसेन के इस संवाद से भी यही सिद्ध होता है कि कर्म अपना फल स्वयं ही प्रदान करते हैं।[1]

इसी को राम भक्त महाकवि तुलसीदास ने भी स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है :—

१—मलिन्द प्रश्न—बौद्ध ग्रंथ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कर्म प्रधान विश्व करि राखा ।
जो जस करहि सो तस फल चाखा ।।

अर्थात् प्राणी जैसा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। बस यही कर्म सिद्धान्त है। इसमें न काल कुछ कर सकता है और न ईश्वर कुछ कर सकता है। कहा भी है—

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृत कर्म शुभाशुभम् ।
जा भुक्त क्षीयते कर्म कल्प कोटि शतैरपि ।।

अर्थ—भोगे बिना करोड़ों कल्पों में भी कर्मों का क्षय नहीं होता है। किये हुए शुभाशुभ कर्म अवश्य भोगने पड़ते हैं।

यथा धेनु सह स्लेषु, वत्सो विन्दति मातरम् ।
तयैवह कृतं कर्म कर्तार, मनु गच्छति ।।
[चाणक्य नीति]

अर्थ—जैसे हजारों गायों के होते हुए भी गोवत्स सीधा अपनी माता के पास जाता है, उसी प्रकार संसार में कृत कर्म भी अपने कर्ता का ही अनुसरण करते हैं। अर्थात् उसी को सुख-दुःख फल देते हैं।

स्वकर्मणा युक्त एव सर्वोह्य त्वद्यते जनः ।
सन्तया कृष्यते तेन न यथा स्वयामच्छति ।।

अर्थ—अपने कर्म से युक्त ही सभी जन उत्पन्न होते हैं। वे उस कर्म के द्वारा ऐसे खींच लिये जाते हैं, जैसा कि वे स्वयं नहीं चाहते।

उक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि कर्म सिद्धान्त के नियम अटल हैं।

कर्म सिद्धान्त की उपयोगिता :

कर्म सिद्धान्त मानव जीवन में आशा एवं स्फूर्ति का संचार करता है। मानव मन को विकास के पथ पर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है। जीवन में आने वाली अनेक उलझनों का सुलझाव करता है। कर्म सिद्धान्त की सबसे बड़ी उपयोगिता यह है कि वह मानव को आत्महीनता एवं आत्मदीनता के गर्त में गिरने से बचाता है। कर्म सिद्धान्त को मानने वाला व्यक्ति न ईश्वर की दया के लिए गिड़गिड़ाता है और न होनहार के लिए अकर्मण्य होकर बैठता है। वह समझता है कि जो समस्याएँ सामने सिर निकाल कर खड़ी हैं, उनसे डरने की आवश्यकता नहीं है। यह सब पूर्वकृत कर्मों का फल है और अपने पुरुषार्थ के द्वारा इनका सामना किया जा सकता है। इस आशा के साथ व्यक्ति पुरुषार्थ

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

करता हुआ अपनी आत्मा को संसार-समुद्र के गहन गर्त से निकाल कर मोक्ष रूपी चरम शिखर पर पहुँच सकता है। जब मानव अपने जीवन में हताश एवं निराश हो जाता है, अपने चारों ओर उसे अन्धकार ही अन्धकार दृष्टिगोचर होता है, यहां तक कि उसका गन्तव्य मार्ग भी विलुप्त हो जाता है। ऐसे समय में उस दुःखी आत्मा को कर्म सिद्धान्त ही एकमात्र धैर्य और शान्ति प्रदान करता है। यह सिद्धान्त उसको बताता है कि हे मानव ! जिस परिस्थिति को देखकर अथवा पाकर तू रोता है या दुःखी होता है, यह तेरे स्वयं द्वारा निर्मित है, इसलिए इसका फल भी तुझे ही भोगना है। कभी यह हो नहीं सकता कि कर्म तू स्वयं करे और फल कोई अन्य भोगे।

जब मनुष्य अपने दुःख और कष्टों में स्वयं अपने आपको कारण मान लेता है तब उसमें कर्म के फल भोगने की शक्ति भी आ जाती है। इस प्रकार जब मानव कर्म सिद्धान्त को पूर्ण रूप से समझकर उस पर विश्वास करता है, तब उसके जीवन में निराशा, तमिस्रा और आत्म-दीनता दूर हो जाती है। उसके लिए जीवन भोग-भूमि न रहकर कर्त्तव्य-भूमि बन जाता है। जीवन में आने वाले सुख एवं दुःख के झंझावातों में उसका मन प्रकम्पित नहीं होता अपितु एक आशा की लहर उमड़ पड़ती है।

सुख के उजले सुन्दर वासर, संकट की काली रातें।
वर्षों कट जाते हैं दिन-दिन, आशा की करते बातें॥

कर्म सिद्धान्त को मानने वाले व्यक्ति का जीवन आशामय बन जाता है। वह अपने जीवन में काल, स्वभाव, होनहार आदि से अधिक महत्त्व अपने कृत कर्म (पुरुषार्थ) को देता है और कभी निराश नहीं होता क्योंकि कर्म सिद्धान्त यह बताता है कि आत्मा को सुख-दुःख की गलियों में घुमाने वाला मनुष्य का कर्म ही है। यह उसके अतीत कर्मों का अवश्यंभावी परिणाम है। हमारी वर्तमान अवस्था जैसी भी है और जो कुछ भी है, वह किसी दूसरे के द्वारा हम पर लादी नहीं गई है, अपितु हम स्वयं उसके निर्माता हैं अतएव जीवन में जो उत्थान और पतन आता है, जो विकास और ह्रास आता है तथा जो सुख और दुःख आता है, उसका दायित्व हम पर है, किसी अन्य पर नहीं। एक दार्शनिक के शब्दों में—

"I am the master of my fate,
I am the Captain of my soul."

अर्थात् मैं स्वयं अपने भाग्य का निर्माता हूँ, मैं स्वयं आत्मा का अधिनायक हूँ, मेरी इच्छा के विरुद्ध मुझे कोई किसी अन्य मार्ग पर नहीं चला सकता। मेरे मन का उत्थान ही मेरा उत्थान है तथा मेरे मन का पतन ही मेरा पतन है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मुझे न कोई उठाने वाला है और न कोई गिराने वाला। मैं स्वयं अपनी शक्ति से उठता हूँ तथा अपनी शक्ति के ह्रास से गिरता हूँ। अपने जीवन में मनुष्य कुछ जैसा और जितना पाता है, वह सब कुछ उसकी बोई हुई खेती का अच्छा या बुरा फल है। अतः जीवन में हताश, निराश तथा दीन-हीन बनने की आवश्यकता नहीं है। यही कर्म सिद्धान्त की उपयोगिता है।

मानव जीवन के दैनिक व्यवहार में कर्म सिद्धान्त कितना उपयोगी है, यह भी विचारणीय प्रश्न है। कर्म-शास्त्र के विद्वानों ने अपने युग में इस समस्या पर विचार किया है। हम अपने दैनिक जीवन में प्रतिदिन देखते हैं और अनुभव करते हैं तो महसूस होता है कि कभी-कभी तो जीवन में सुख के सुन्दर बादल छा जाते हैं और कभी-कभी दुःख की घनघोर घटाएँ सामने विकराल स्वरूप धारण किये हुए खड़ी हैं। उस समय प्रतीत होता है कि यह जीवन विभिन्न बाधाओं, दुःख और विविध प्रकार के कष्टों से भरा पड़ा है, जिनके आने पर हम घबरा जाते हैं तथा हमारी बुद्धि कुंठित हो जाती है। मानव जीवन की वह घड़ी कितनी विकट होती है। जब एक ओर मनुष्य को उसकी बाहरी परिस्थितियां परेशान करती हैं और दूसरी ओर उसके हृदय की व्याकुलता बढ़ जाती है। इस प्रकार की परिस्थिति में ज्ञानी और पंडित कहलाने वाले व्यक्ति भी अपने गन्तव्य मार्ग में भटक जाते हैं। हताश और निराश होकर अपने दुःख, कष्ट और क्लेश के लिए दूसरों को कोसने लगते हैं। वे उस समय भूल जाते हैं कि वास्तव में उपादान कारण क्या है, उनकी दृष्टि केवल बाह्य निमित्त पर जाकर टिकती है। इस प्रकार के विषय प्रसंग पर वस्तुतः कर्म सिद्धान्त ही हमारे लक्ष्य के पथ को आलौकित करता है और मार्ग से भटकती हुई आत्मा को पुनः सन्मार्ग पर ला सकता है।

सुख और दुःख का मूल कारण अपना कर्म ही है। वृक्ष का जैसे मूल कारण बीज ही है। वैसे ही मनुष्य के भौतिक जीवन का मूल कारण उसका अपना कर्म ही है। सुख-दुःख के इस कार्य-कारण भाव को समझकर कर्म सिद्धान्त मनुष्य को आकुलता एवं व्याकुलता के गहन गर्त से निकाल कर जीवन के विकास की ओर चलने को प्रेरित करता है। इस प्रकार कर्म सिद्धान्त आत्मा को निराशा के झंझावात से बचाकर कष्ट एवं क्लेश सहने की शक्ति प्रदान करता है। संकट के समय में भी बुद्धि को स्थिर रखने का दिव्य सन्देश देता है। कर्म सिद्धान्त में विश्वास रखने वाला व्यक्ति यह विचार करता है कि जीवन में जो अनुकूलता एवं प्रतिकूलता आती है, उसका उत्पन्नकर्ता मैं स्वयं हूँ। फलतः उसका अनुकूल या प्रतिकूल परिणाम भी मुझे ही भोगना चाहिये।

यह दृष्टि मानव जीवन को शान्त, सम्पन्न और आनन्दमय बना देती है जिससे मानव आशा एवं स्फूर्ति के साथ अपने जीवन का विकास करता हुआ आगे बढ़ जाता है। यही जीवन में कर्म सिद्धान्त की उपयोगिता है। □

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org